BHARATI INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY
RESEARCH & DEVELOPMENT (BIJMRD)
(Open Access Peer-Reviewed International Journal)
DOI Link : https://doi.org/10.70798/Bijmrd/03010037
Available Online: www.bijmrd.com|BIJMRD Volume: 3| Issue: 01| January 2025| e-ISSN: 2584-1890

जनजातीय आंदोलनों की बदलती प्रकृति रांची जिला, भारत: 1830-1925

Ashish Jaganu[1] & Dr. Manasi Das[2]

1. Research Scholar, Department of History, RKDF University, Ranchi
2. Assistant Professor, Department of History, RKDF University, Ranchi
Email: manasipaul@gmail.com

सारांश:

छोटानागपुर का मुख्य भाग रांची जिला 1830-1925 तक आदिवासी आंदोलनों की गाथा का गवाह रहा। इन सामाजिक-राजनीतिक विद्रोहों में, रांची जिले के दो प्रमुख आदिवासी समुदायों, ओरांव और मुंडा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ओराँव और मुंडा का मामला लेते हुए, यह पेपर जनजातीय आंदोलनों के उपनिवेशवाद समर्थक से उपनिवेशवाद विरोधी में परिवर्तन पर प्रकाश डालेगा। साथ ही, यह पेपर आंदोलनों की कई परतों पर विचार करके आदिवासी आंदोलनों के विषम चरित्र को सामने लाने का प्रयास करेगा।

कीवर्ड: *ओरांव, मुंडा, रांची, कोल विद्रोह, सरदारी लड़ाई, बिरसा आंदोलन, ताना भगत आंदोलन*

1. परिचय

1830-1925 तक चार प्रमुख जनजातीय आंदोलन हुए। कोल विद्रोह, सरदारी लड़ाई, बिरसा आंदोलन और ताना भगत आंदोलन रांची जिले में उठापटक और बीच-बीच में इसकी गूंज आसपास के जिलों तक पहुंच गयी. ये आंदोलन अलग-अलग तरीके से हुए समय सीमा, विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न नेतृत्व में। दरअसल, वे विचारधारा, संरचना आदि के मामले में एक-दूसरे से भिन्न हैं उद्देश्य। संक्षेप में, वे चरित्र में एकरूप न होकर विषमांगी थे। आदिवासी आंदोलनों की विविध प्रकृति को उजागर करने के लिए, के.एस. सिंह ने आदिवासी आंदोलनों को दो चरणों में विभाजित किया था: 1765-1857 और 1857-1920. उनके अनुसार, पहला चरण मुख्य रूप से एलियंस या बाहरी लोगों दोनों के खिलाफ प्रतिरोध की प्रकृति पर आधारित था बैरोनियल और प्लेबियन उप-प्रकार। इसके विपरीत, वह दूसरे चरण को कृषि और वन केंद्रित प्रतिरोध मानते हैं जिसमें यह भी शामिल है राजनीतिक मुद्दा, सामाजिक सुधार और स्वतंत्रता'। [सिंह 2012:90]। कोई भी उनसे कुछ हद तक सहमत हुए बिना नहीं रह सकता लेकिन ऐसा भी है सच है कि आदिवासी आंदोलनों की प्रकृति में विविधता उपरोक्त विभाजन तक सीमित नहीं थी और इसे उससे परे देखा जाना चाहिए। के लिए विचाराधीन अवधि के दौरान आदिवासी आंदोलनों की प्रकृति और अवधारणा को समझने के लिए, लेख को दो भागों में विभाजित किया गया है: उपनिवेशवाद समर्थक और उपनिवेशवाद विरोधी। इन घटनाओं की समरूप प्रकृति से परे देखते हुए, यह विशेष लेख प्रकृति में परिवर्तन पर प्रकाश डालने वाला है आंदोलनों के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पहलुओं पर विचार करके उपनिवेशवाद-समर्थक से उपनिवेशवाद-विरोधी आंदोलन। यह लेख जनजातीय आंदोलनों की विभिन्न परतों जैसे लिंग की भूमिका, आंतरिक पदानुक्रम और परिवर्तन पर भी प्रकाश डालने वाला है बाहरी से भीतरी तक दिकुओं की भूमिका।

2. मुख्य विषयवस्तु

'अच्छी सरकार' की अवधारणा [दामोदरन 2011: 69] को औपनिवेशिक युग के प्रारंभिक चरण में जनजातियों के बीच पेश किया गया था। यह इसका मतलब था कि जनजातियों की भूमि में न्याय लाने वाली एकमात्र शक्ति औपनिवेशिक शासन थी। हालाँकि, औपनिवेशिक सरकार ने देखाजनजातियाँ एक असभ्य समुदाय थीं जो अस्थिर चरित्र से युक्त थीं। काफी हद तक, ऐसी अंतर्दृष्टि का परिणाम थादिकुओं (शोषक वर्ग जो जनजातियों का आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक रूप से शोषण करता था) द्वारा आदिवासी छवि की गलत व्याख्या छोटानागपुर में) प्रथम काल में जनजातियों और औपनिवेशिक शासन के बीच कोई सीधा संपर्क नहीं था। के बीच एकमात्र लिंक दूसरा दिकु था, जिसने अवसर का दुरुपयोग करते हुए शासन के सामने जनजातियों की जंगली, जंगली और जानवर की छवि बनाई।

औपनिवेशिक शासन के तहत जनजातियों की भूमि पर शोषक वर्ग डिकस का विकास हुआ। सत्य से अज्ञात, जनजातियाँ शुरुआत में सुरक्षा के लिए औपनिवेशिक शासन की प्रतीक्षा की। शासन से अपेक्षित प्रतिक्रिया न मिलने पर जनजातियों ने इसका सहारा लिया इस उम्मीद में हिंसा की कि शासन उनकी शिकायतों पर ध्यान देगा। लेकिन कबीलों के इस कृत्य का वांछित परिणाम नहीं निकला और आये पीड़ित के बजाय अपराधी करार दिया गया. इससे जनजातियों में और निराशा फैल गई। हालाँकि, बीच में आशा की किरण जगी रांची जिले में ईसाई मिशनरियों के आगमन के बाद जनजातियों ने अपनी विशिष्ट स्थितियों में सुधार किया, क्योंकि उन्होंने उन्हें एक के रूप में पहचाना औपनिवेशिक शासन तक पहुँचने की सीढ़ी। इस चरण में, मिशनरियों के मार्गदर्शन में, जनजातियों ने अपनाकर सरकार से संपर्क करने का प्रयास किया कानूनी तरीके. दुर्भाग्य से, जमीनी हकीकत अपरिवर्तित रही। इसने जनजातियों को 'परोपकारी' की भूमिका पर सवाल उठाने के लिए मजबूर किया प्रशासन'। जनजातियों के मन से 'अच्छी सरकार' की छवि धूमिल होने लगी क्योंकि उन्होंने दिकुओं और इसके पीछे के वास्तविक व्यक्ति को पहचान लियाजनजातीय आंदोलनों की प्रकृति में बदलाव आया जो उपनिवेशवाद समर्थक से उपनिवेशवाद विरोधी हो गया। यहाँ प्रो शब्द का प्रयोग किया गया है विरोधी का विलोम शब्द दर्शाता है जो बताता है कि आदिवासी आंदोलन शुरू से ही साम्राज्यवाद विरोधी नहीं थे। इस परिवर्तन को बेहतर ढंग से समझने के लिए, यह लेख उन चार प्रमुख आदिवासी आंदोलनों से निपटने जा रहा है जो देश के विभिन्न कोनों में भड़क उठे।

- कोल विद्रोह **(1831-32)**

कोल विद्रोह कोई अचानक फूटा विस्फोट नहीं था बल्कि एक सुनियोजित आंदोलन था क्योंकि उनका बहुत कुछ दांव पर लगा था। [गुहा 1992: 2]। वह था इसका नेतृत्व तीन आदिवासी समुदायों यानी ओरांव, मुंडा और हो ने किया, जिसका उद्देश्य दिकुओं के कीटाणुओं को उनकी मातृभूमि से उखाड़ फेंकना था। दिकुस मूल रूप से औपनिवेशिक शासन के एजेंट थे जिन्होंने साहूकारों, जमींदारों, व्यापारियों आदि के रूप में जनजातियों के जीवन में कहर बरपाया। प्रारंभ में, उन्होंने कर लगाकर और जनजातियों की उपजाऊ भूमि को अवैध तरीके से छीनकर जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को बाधित किया जो जनजातियों के बीच अशांति पैदा करने के लिए पर्याप्त था। हालाँकि, उनका कदाचार यहीं तक सीमित नहीं था। इस बीच, वे महिलाओं को परेशान करना शुरू कर दिया जो अंततः विद्रोह का तात्कालिक कारण बन गया। उदाहरणार्थ: बिंदारी मानकी, एक आदिवासी मुखिया और एक विद्रोही नेता ने अपने शब्दों में तात्कालिक कारण को परिभाषित किया: -

.......जब हमारी उड़ान का पता चला तो मुंशी और जमादार मेरी दोनों पत्नियों को उठा ले गये। उन्होंने उस वृद्ध को रिहा कर दिया, जो गर्भवती थी, परन्तु दूसरे को, जो जवान था, मुंशी और उसके दो चपरासियों ने पकड़ लिया और उसके साथ बलात्कार किया; सुरगांव के सिंह ने भी ले लिया है मेरी दो बहनों को जबरदस्ती भगा दिया, जो अभी भी उसके घर में हैं। .... हम घर लौटे, सभी कोल, अपने भाइयों और जाति को आमंत्रित किया तमाड़ के लंका गाँव में एकत्रित हों, जहाँ हमने परामर्श किया। पठानों ने हमारी और सिंह ने हमारी बहनों की इज्जत छीन ली थी कुँअर हरनाथ साही ने सिंह को दी गई बारह गाँवों की हमारी संपत्ति को जबरन छीन लिया था। हमारा जीवन हम इसका कोई मूल्य नहीं माना गया और एक जाति और भाई होने के कारण इस बात पर सहमति हुई कि हमें काटना, लूटना, हत्या करना शुरू कर देना चाहिए। खाओ। ....यही संकल्प है कि हम उन लोगों की हत्या और लूटपाट कर रहे हैं जिन्होंने हमें सम्मान और सम्मान दोनों से वंचित किया है। घरों

में, यह सोचकर कि इस तरह के अत्याचार करने से हमारी शिकायतें सामने आ जाएंगी, और यदि हमारा कोई स्वामी होता, तो नोटिस किया जाताउन्हें न्याय दिलाया गया। [सिंह 2012: 68-69]। किसी भी अन्य भारतीय समाज की तरह, महिलाओं को आदिवासी समाज का सम्मान माना जाता था। इस प्रकार, आदिवासी महिलाओं के खिलाफ हिंसा का मतलब था आदिवासी समाज का अपमान करना, जो जनजातियों के लिए अस्वीकार्य था। इस प्रकार, मौजूदा परिस्थितियों ने जनजातियों को हथियार उठाने के लिए मजबूर किया अपनी गरिमा और सम्मान की रक्षा के लिए दिकुओं के विरुद्ध। इसके साथ ही जनजातियाँ इस आंदोलन को उजागर करने के लिए एक मंच के रूप में उपयोग करना चाहती थीं उनकी शिकायतें ताकि 'परोपकारी सरकार' द्वारा न्याय प्रदान किया जा सके।

- सरदारी लड़ाई **(1858-90)**

1857 के अगले वर्ष में रांची जिले में सरदारी लड़ाई की शुरुआत हुई, जिसे मुल्की लड़ाई (देश के लिए लड़ाई) भी कहा जाता है। जो चार दशकों तक जारी रहा. पिछले आंदोलनों के विपरीत, लड़ाई में एक गैर-अस्थिर दृष्टिकोण देखा गया। इधर उराँव और मुंडा औपनिवेशिक शासन से न्याय की मांग के लिए याचिका, प्रार्थना और विरोध जैसे शांतिपूर्ण तरीकों को अपनाया। लेकिन इस तथ्य के बावजूद, वहाँ भी थे कुछ उदाहरण जब जनजातियों ने हिंसक कृत्य अपनाए। उदाहरण के लिए: 1862-88 के दौरान जमींदारों और जमींदारों के बीच कभी-कभी झड़पें होती रहती थींI दोनों आदिवासी समुदायों का मुख्य उद्देश्य अपने खोए हुए भूमि अधिकारों को पुनः प्राप्त करना था। हालांकि, इसके पीछे मकसद सिर्फ इतना नहीं था उनके सामाजिक-आर्थिक उत्थान तक ही सीमित है। भूमि अधिकार के माध्यम से वे अपनी सांस्कृतिक पहचान की भी रक्षा करना चाहते थे, जो कि थीओरॉंव और मुंडा को श्रमिक वर्ग के रूप में आधिकारिक रूप से वर्णित करने से खतरा बढ़ गया क्योंकि इससे जनजातियों की स्थिति तेजी से कम हो रही थी भूमि मालिकों से लेकर दास प्रथा तक। और दुर्भाग्य से, यह ओरांव और मुंडा के भीतर बेथ-बेगारी (जबरन मजदूरी) प्रणाली को गति दे रहा था आदिवासी समुदाय जो अंततः आंदोलन का तात्कालिक कारण बने। उदाहरण के लिए: डब्ल्यू. एच. ग्रिमली, (छोटानागपुर डिवीजन के आयुक्त) ने आंदोलन के सामान्य कारण को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित अंश एकत्र किया: "मुझे बेठ-बेगारी प्रस्तुत करने के लिए मजबूर किया जाता है जैसे कि मैं एक धनगर हूं"। [लोहरदुग्गा जिले में कोल आंदोलन, गृह विभाग, न्यायिक, 1890, संख्या 95-109: 3. एनएआई]। इस अनुच्छेद से हमें यह पता चलता है कि जनजातियाँ जमींदारों द्वारा धनगर (खेत नौकर) के रूप में व्यवहार किए जाने से नफरत करती थीं। जनजातियाँ बहुत जागरूक थीं अपने रिश्तेदारों/पड़ोसियों के श्रम और बाहरी भुगतान वाले श्रम के अन्य रूपों के बारे में। वास्तव में, उन्होंने रिश्तेदारों की मदद करने पर विचार किया/ पड़ोसियों या रिश्तेदारों के अन्य सदस्यों को अपने कृषि या अन्य कार्यों में सम्मानजनक कार्य के रूप में सामूहिक कार्य की आवश्यकता होती है पैसे के लिए अपना श्रम बेचना शर्मनाक कृत्य माना। [सिन्हा 2012: 69]। उराँव और मुंडा जिन्हें कभी रुतबा हासिल था खुंटकट्टी (किसी गांव के मूल संस्थापक या बसने वाले के वंशज) और भुइंहारी (मिट्टी को साफ करने वाले मूल निवासी के वंशज) थे अब जमींदारों की भूमि पर सेवा देने के लिए बाध्य किया गया। यह जनजातीय समाज के पुरुष सदस्यों तक ही सीमित नहीं था बल्कि महिलाओं तक ही सीमित था सदस्यों को बेथ-बेगारी प्रणाली में भी शामिल किया गया।

- **बिरसा आंदोलन** (1899- 1900)

यह आंदोलन, जिसे उलगुलान (महान उपद्रव) के नाम से जाना जाता है, का नेतृत्व वर्ष 1899 में बिरसा मुंडा ने किया था।1895 से आंदोलन एक धार्मिक चरित्र के साथ विकसित होना शुरू हुआ। इसमें बिरसा ने पारंपरिक धर्म में सुधार करने की कोशिश की (जैसा कि बताया गया है) मुंडा के सर्वोच्च देवता सिंगबोंगा द्वारा उन्हें) और अपने अनुयायियों को बोंगा (आत्मा) की पूजा छोड़ने और निषेध करने के लिए कहा। मांसाहारी भोजन और शराब का सेवन। उन्होंने दुनिया के अंत की भी भविष्यवाणी की और अपने अनुयायियों को किराया देना बंद करने का आदेश दिया सरकार और जुताई बंद कर दे। बाद में, आंदोलन जिस राजनीतिक चरित्र में दिखता था, वह उसमें समाहित हो गया हिंसक तरीकों को अपनाकर मिशनरियों और सरकार को हटाकर मुंडा राज की स्थापना के लिए आगे बढ़े। 1895 में, बिरसा पहले एक नेता के रूप में विकसित हुए और थोड़े ही समय में वह एक चिकित्सक, फिर चमत्कारी, फिर उपदेशक और फिर वह बन गए। बड़ा होकर भविष्यवक्ता बन गया।

[सिंह 1983:58]। कुल मिलाकर, इसने उन्हें जनजातियों के बीच (विशेषकर) एक प्रमुख व्यक्ति बना दिया मुंडा) जिन्होंने उन्हें अपने मुक्तिदाता के रूप में देखा। दूसरी ओर, बिरसा की बढ़ती लोकप्रियता ने औपनिवेशिक शासन और उन्हें सचेत कर दिया उनकी तत्काल गिरफ्तारी की मांग की. परिणामस्वरूप, उन्हें 19 नवंबर 1895 को गिरफ्तार कर लिया गया और कठोर कारावास की सजा सुनाई गई 50 रुपये के जुर्माने के भुगतान के साथ दो साल के लिए। [सिंह 2010: 250]। उनके कारावास की अवधि के दौरान, रांची जिले में गंभीर स्थिति देखी गयी 1896 से 1897 तक अकाल पड़ा, जिसके बाद मुंडा जनजाति का असम के चाय बागानों की ओर भारी पलायन हुआ। तालिका 1. मुख्य बातें कि वर्ष 1897 के दौरान असम के चाय बागानों में जनजातियों के आप्रवासन में भारी वृद्धि हुई। इसके बाद ये पलट गया बिरसा आंदोलन का प्रमुख कारण बन गया। गिरफ्तारी के पीछे का मकसद जनजातियों के बीच बिरसा मुंडा के बढ़ते प्रभाव को नियंत्रित करना था। लेकिन गिरफ्तारी के बाद भी वह अपने शिष्यों के माध्यम से जनजातियों के बीच एक प्रेरक शक्ति बने रहे। 30 नवंबर 1897 को उन्हें रिहा कर दिया गया अपनी रिहाई के तुरंत बाद उन्होंने मुंडा क्षेत्र में बैठकें आयोजित करना शुरू कर दिया। [सिंह 2012:251]। साथ ही उन्होंने अपना काम भी जारी रखा क्रांतिकारी शिक्षाएँ जो लगभग दो वर्षों तक चलीं। आख़िरकार क्रिसमस पर हिंसक आंदोलन भड़क उठा रांची जिले में 1899 की पूर्व संध्या।

3. निष्कर्ष

चार आंदोलनों ने रांची जिले में आदिवासी प्रतिरोध के आंतरिक और अंतर आयामों पर प्रकाश डाला, जिससे अस्तित्व का पता चला जनजातीय सामाजिक क्षेत्र में दो प्रकार की दूरियाँ हैं: जनजातियों के भीतर की दूरियाँ और जनजातियों और गैर-जनजातियों के बीच की दूरियाँ। जनजातियों के भीतर सामाजिक और आर्थिक असमानताओं पर आधारित दूरियाँ आदिवासियों की समतावादी संरचना पर सवाल उठाती थीं समाज जबकि जनजातियों और गैर-जनजातियों के बीच दूरियां, जो अलग-अलग जातीय पहचान पर आधारित थीं, ने मजबूत को उजागर किया जनजातियों के बीच गैर-जनजातियों के बीच अलगाव की भावना। कुल मिलाकर, आदिवासी प्रतिरोध की कई परतें और विविध प्रकृति आंदोलनों ने तत्कालीन विद्वानों द्वारा प्रस्तुत जनजातीय आंदोलनों की समरूप प्रकृति की रूपरेखा को चुनौती दी।

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

- बारा, जे. (2009). औपनिवेशिक छोटानागपुर में विदेशी निर्माण और जनजातीय प्रतियोगिता: ईसाई धर्म का माध्यम। आर्थिक और पॉलिटिकल वीकली, खंड। एक्सएलआईवी नं. 52, पृ.90-96.
- चट्टोराज, ए.के. (2010)। छोटानागपुर में मुल्की लड़ाई: उत्पत्ति और प्रभाव। ए. मिश्रा और सी.के. पैटी (सं.), आदिवासी में झारखंड में आंदोलन, 1857-2007 (पृ. 92-101)। नई दिल्ली: कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी प्राइवेट। लिमिटेड
- दामोदरन, वी. (2011)। भारत में 'जनजाति' का औपनिवेशिक निर्माण। बी. पति (सं.) में, औपनिवेशिक भारत में आदिवासी: जीवन रक्षा, प्रतिरोध और बातचीत (पीपी.55-87)। नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान।
- दासगुप्ता, एस. (2014)। औपनिवेशिक भारत में आदिवासियों की पहचान का पता लगाना: छोटानागपुर में ओरांव और टाना भगत, 1914- 1919. सी. बेट्स और ए. शाह (सं.) में, सैवेज अटैक: ट्राइबल इंसर्जेंसी इन इंडिया (पीपी.112-139)। नई दिल्ली: सामाजिक विज्ञान प्रेस।
- वी. गुहा, आर. (1992)। विद्रोह-विरोधी गद्य. आर. गुहा (सं.) में, सबाल्टर्न स्टडीज़ II: दक्षिण एशियाई इतिहास पर लेखन और समाज (पीपी.1-40)। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- गुप्ता, एस.डी. (2011)। आदिवासियों की पहचान पर पुनर्विचार: छोटा नागपुर किरायेदारी अधिनियम (1908) और होस के बीच इसके परिणाम सिंहभूम के. बी. पति (सं.) में औपनिवेशिक भारत में आदिवासी: अस्तित्व, प्रतिरोध और बातचीत (पीपी.88-111)। नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान।

- मैं। बारा, जे. (2009). औपनिवेशिक छोटानागपुर में विदेशी निर्माण और जनजातीय प्रतियोगिता: ईसाई धर्म का माध्यम। आर्थिक और पॉलिटिकल वीकली, खंड। एक्सएलआईवी नं. 52, पृ.90-96.
- द्वितीय. चट्टोराज, ए.के. (2010)। छोटानागपुर में मुल्की लड़ाई: उत्पत्ति और प्रभाव। ए. मिश्रा और सी.के. पैटी (सं.), आदिवासी में
- झारखंड में आंदोलन, 1857-2007 (पृ. 92-101)। नई दिल्ली: कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी प्राइवेट। लिमिटेड
- iii. दामोदरन, वी. (2011)। भारत में 'जनजाति' का औपनिवेशिक निर्माण। बी. पति (सं.) में, औपनिवेशिक भारत में आदिवासी: जीवन रक्षा,प्रतिरोध और बातचीत (पीपी.55-87)। नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान।
- iv. दासगुप्ता, एस. (2014)। औपनिवेशिक भारत में आदिवासियों की पहचान का पता लगाना: छोटानागपुर में ओरांव और टाना भगत, 1914-
- 1919. सी. बेट्स और ए. शाह (सं.) में, सैवेज अटैक: ट्राइबल इंसर्जेंसी इन इंडिया (पीपी.112-139)। नई दिल्ली: सामाजिक विज्ञान प्रेस।
- वी. गुहा, आर. (1992)। विद्रोह-विरोधी गद्य. आर. गुहा (सं.) में, सबाल्टर्न स्टडीज़ II: दक्षिण एशियाई इतिहास पर लेखन और समाज (पीपी.1-40)। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- vi. गुप्ता, एस.डी. (2011)। आदिवासियों की पहचान पर पुनर्विचार: छोटा नागपुर किरायेदारी अधिनियम (1908) और होस के बीच इसके परिणाम
- सिंहभूम के. बी. पति (सं.) में औपनिवेशिक भारत में आदिवासी: अस्तित्व, प्रतिरोध और बातचीत (पीपी.88-111)। नई दिल्ली:ओरिएंट ब्लैकस्वान।

Citation: Jaganu. A. & Das. Dr. M., (2025) “जनजातीय आंदोलनों की बदलती प्रकृति रांची जिला, भारत: 1830-1925”, *Bharati International Journal of Multidisciplinary Research & Development (BIJMRD)*, Vol-3, Issue-01, January-2025.